बेटा –'औरतों की कमी तो नहीं; मगर देवियों की कमी जरूर है !'

माँ –'नौज ऐसी औरत। सोने लगती है, तो बच्चा चाहे रोते-रोते बेदम हो जाय, मिनकती तक नहीं। फूल-सा बच्चा लेकर मैके गयी थी, तीन महीने में लौटी, तो बच्चा आधा भी नहीं है।'

बेटा –'तो क्या मैं यह मान लूँ कि तुम्हें उसके लड़के से जितना प्रेम है, उतना उसे नहीं है ? यह तो प्रकृति के नियम के विरुद्ध है। और मान लो,वह निरमोहिन ही है, तो यह उसका दोष है। तुम क्यों उसकी जिम्मेदारी अपने सिर लेती हो ? उसे पूरी स्वतन्त्रता है, जैसे चाहे अपने बच्चे को पाले, अगर वह तुमसे कोई सलाह पूछे, प्रसन्न-मुख से दे दो, न पूछे तो समझ लो, उसे तुम्हारी मदद की जरूरत नहीं है। सभी माताएँ अपने बच्चे को प्यार करती हैं और वह अपवाद नहीं हो सकती।'

माँ – 'तो मैं सबकुछ देखूँ, मुँह न खोलूँ ? घर में आग लगते देखूँ और चुपचाप मुँह में कालिख लगाये खड़ी रहूँ ?'

बेटा –'तुम इस घर को जल्द छोड़नेवाली हो, उसे बहुत दिन रहना है। घर की हानि-लाभ की जितनी चिन्ता उसे हो सकती है, तुम्हें नहीं हो सकती। फिर मैं कर ही क्या सकता हूँ ? ज्यादा-से-ज्यादा उसे डाँट बता सकता हूँ; लेकिन वह डाँट की परवाह न करे और तुर्की-बतुर्की जवाब दे, तो मेरे पास ऐसा कौन-सा साधन है, जिससे मैं उसे ताड़ना दे सकूँ ?'

माँ –'तुम दो दिन न बोलो, तो देवता सीधे हो जायँ, सामने नाक रगड़े।'

बेटा –'मुझे इसका विश्वास नहीं है। मैं उससे न बोलूँगा, वह भी मुझसे न बोलेगी। ज्यादा पीछे पड़ूँगा, तो अपने घर चली जायगी।'

माँ –'ईश्वर यह दिन लाये। मैं तुम्हारे लिए नयी बहू लाऊँ।'

बेटा –'सम्भव है, इसकी भी चची हो।'

(सहसा बहू आकर खड़ी हो जाती है। माँ और बेटा दोनों स्तम्भित हो जाते हैं, मानो कोई बम गोला आ गिरा हो। रूपवती, नाजुक-मिजाज, गर्वीली रमणी है, जो मानो शासन करने के लिए ही बनी है। कपोल तमतमाये हुए हैं; पर अधरों पर विष भरी मुस्कान है और आँखों में व्यंग्य-मिला परिहास।)

माँ (अपनी झेंप छिपाकर) 'तुम्हें कौन बुलाने गया था ?'

बहू –'क्यों, यहाँ जो तमाशा हो रहा है, उसका आनन्द मैं न उठाऊँ ?'

बेटा –'माँ-बेटे के बीच में तुम्हें दखल देने का कोई हक नहीं।'

(बहू की मुद्रा सहसा कठोर हो जाती है।)

बहू –'अच्छा, आप जबान बन्द रखिए। जो पति अपनी स्त्री की निन्दा सुनता रहे, वह पति बनने के योग्य नहीं। वह पति-धर्म का क ख ग भी नहीं जानता। मुझसे अगर कोई तुम्हारी बुराई करता, चाहे वह मेरी प्यारी माँ ही क्यों न होती, तो मैं उसकी जबान पकड़ लेती ! तुम मेरे घर जाते हो, तो वहाँ तो जिसे देखती हूँ, तुम्हारी प्रशंसा ही करता है। छोटे से बड़े तक गुलामों की तरह दौड़ते फिरते हैं। अगर उनके बस में हो, तो तुम्हारे लिए स्वर्ग के तारे तोड़ लायें और उसका जवाब मुझे यहाँ यह मिलता है कि बात-बात पर ताने-मेहने, तिरस्कार-बहिष्कार। मेरे घर तो तुमसे कोई नहीं कहता कि तुम देर में क्यों उठे, तुमने अमुक महोदय को सलाम नहीं किया, अमुक के चरणों पर सिर क्यों नहीं पटका ?

मेरे बाबूजी कभी गवारा न करेंगे कि तुम उनकी देह पर मुक्कियाँ लगाओ, या उनकी धोती धोओ, या उन्हें खाना पका कर खिलाओ। मेरे साथ यहाँ यह बर्ताव क्यों ? मैं यहाँ लौंडी बनकर नहीं आयी हूँ। तुम्हारी जीवन- संगिनी बनकर आयी हूँ। मगर जीवन-संगिनी का यह अर्थ तो नहीं कि तुम मेरे ऊपर सवार होकर मुझे जलाओ। यह मेरा काम है कि जिस तरह चाहूँ, तुम्हारे साथ अपने कर्तव्य का पालन करूँ।

उसकी प्रेरणा मेरी आत्मा से होनी चाहिए, ताड़ना या तिरस्कार से नहीं। अगर कोई मुझे कुछ सिखाना चाहता है, तो माँ की तरह प्रेम से सिखाये, मैं सीखूँगी,लेकिन कोई जबरदस्ती, मेरी छाती पर चढ़कर, अमृत भी मेरे कण्ठ में ठूँसना चाहे तो मैं ओंठ बन्द कर लूँगी। मैं अब कब की इस घर को अपना समझ चुकी होती; अपनी सेवा और कर्तव्य का निश्चय कर चुकी होती; मगर यहाँ तो हर घड़ी हर पल, मेरी देह में सुई चुभाकर मुझे याद दिलाया जाता है कि तू इस घर की लौंडी है, तेरा इस घर से कोई नाता नहीं, तू सिर्फ गुलामी करने के लिए यहाँ लायी गयी है, और मेरा खून खौलकर रह जाता है। अगर यही हाल रहा, तो एक दिन तुम दोनों मेरी जान लेकर रहोगे।

माँ – 'सुन रहे हो अपनी चहेती रानी की बातें ? वह यहाँ लौंडी बनकर नहीं, रानी बनकर आयी है, हम दोनों उसकी टहल करने के लिए हैं, उसका काम हमारे ऊपर शासन करना है, उसे कोई कुछ काम करने कौन कहे, मैं खुद मरा करूँ। और तुम उसकी बातें कान लगाकर सुनते हो। तुम्हारा मुँह कभी नहीं खुलता कि उसे डाँटो या समझाओ। थर-थर काँपते रहते हो।'

बेटा –'अच्छा अम्माँ, ठंडे दिल से सोचो। मैं इसकी बातें न सुनूँ, तो कौन सुने ? क्या तुम इसके साथ इतनी हमदर्दी भी नहीं देखना चाहतीं। आखिर बाबूजी जीवित थे, तब वह तुम्हारी बातें सुनते थे या नहीं ? तुम्हें प्यार करते थे या नहीं ? फिर मैं अपनी बीवी की बातें सुनता हूँ तो कौन-सी नयी बात करता हूँ। और इसमें तुम्हारे बुरा मानने की कौन बात है ? '

माँ –'हाय बेटा, तुम अपनी स्त्री के सामने मेरा अपमान कर रहे हो ! इसी दिन के लिए मैंने तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया था ? क्यों मेरी छाती नहीं फट जाती ?%

(वह आँसू पोंछती, आपे से बाहर, कमरे से निकल जाती है। स्त्री-पुरुष दोनों कौतुक-भरी आँखों से उसे देखते हैं, जो बहुत जल्द हमदर्दी में बदल जाती हैं।)

पति –'माँ का हृदय ...'

स्त्री –'माँ का हृदय नहीं, स्त्री का हृदय ...'

पति –'अर्थात् ?'

स्त्री –'जो अन्त तक पुरुष का सहारा चाहता है, स्नेह चाहता है और उस पर किसी दूसरी स्त्री का असर देखकर ईर्ष्या से जल उठता है।'

पति –'क्या पगली की-सी बातें करती हो ?%

स्त्री –'यथार्थ कहती हूँ।'

पति –'तुम्हारा दृष्टिकोण बिलकुल गलत है। और इसका तजरबा तुम्हें तब होगा, जब तुम खुद सास होगी। स्त्री मुझे सास बनना ही नहीं है। लड़का अपने हाथ-पाँव का हो जाये, ब्याह करे और अपना घर सँभाले। मुझे बहू से क्या सरोकार ?'

पति –'तुम्हें यह अरमान बिलकुल नहीं है कि तुम्हारा लड़का योग्य हो,तुम्हारी बहू लक्ष्मी हो, और दोनों का जीवन सुख से कटे ? '

स्त्री –'क्या मैं माँ नहीं हूँ ? '

पति –'माँ और सास में क्या कोई अन्तर है ?'

स्त्री –'उतना ही जितना जमीन और आसमान में है ! माँ प्यार करती है, सास शासन करती है। कितनी ही दयालु, सहनशील सतोगुणी स्त्री हो, सास बनते ही मानो ब्यायी हुई गाय हो जाती है। जिसे पुत्र से जितना ही ज्यादा प्रेम है, वह बहू पर उतनी ही निर्दयता से शासन करती है। मुझे भी अपने ऊपर विश्वास नहीं है।

अधिकार पाकर किसे मद नहीं हो जाता ? मैंने तय कर लिया है, सास बनूँगी ही नहीं। औरत की गुलामी सासों के बल पर कायम है। जिस दिन सासें न रहेंगी, औरत की गुलामी का अन्त हो जायगा।'

पति –'मेरा खयाल है, तुम जरा भी सहज बुद्धि से काम लो, तो तुम अम्माँ पर भी शासन कर सकती हो। तुमने हमारी बातें कुछ सुनीं ?'

स्त्री –'बिना सुने ही मैंने समझ लिया कि क्या बातें हो रही होंगी। वही बहू का रोना...'

पति –'नहीं-नहीं तुमने बिलकुल गलत समझा। अम्माँ के मिजाज में आज मैंने विस्मयकारी अन्तर देखा, बिलकुल अभूतपूर्व। आज वह जैसे अपनी कटुताओं पर लज्जित हो रही थीं। हाँ, प्रत्यक्ष रूप से नहीं, संकेत रूप से। अब तक वह तुमसे इसलिए नाराज रहती थीं कि तुम देर में उठती हो। अब शायद उन्हें यह चिन्ता हो रही है कि कहीं सबेरे उठने से तुम्हें ठण्ड न लग जाय। तुम्हारे लिए पानी गर्म करने को कह रही थीं !'

स्त्री (प्रसन्न होकर)–'सच !'

पति–'हाँ, मुझे तो सुनकर आश्चर्य हुआ।'

स्त्री –'तो अब मैं मुँह-अँधेरे उठूँगी। ऐसी ठण्ड क्या लग जायगी; लेकिन तुम मुझे चकमा तो नहीं दे रहे हो ?'

पति –'अब इस बदगुमानी का क्या इलाज। आदमी को कभी-कभी अपने अन्याय पर खेद तो होता ही है।

स्त्री –'तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर। अब मैं गजरदम उठूँगी। वह बेचारी मेरे लिए क्यों पानी गर्म करेंगी ? मैं खुद गर्म कर लूँगी। आदमी करना चाहे तो क्या नहीं कर सकता ?'

पति –'मुझे उनकी बात सुन-सुनकर ऐसा लगता था, जैसे किसी दैवी आदेश ने उनकी आत्मा को जगा दिया हो। तुम्हारे अल्हड़पन और चपलता पर कितना भन्नाती हैं। चाहती थीं कि घर में कोई बड़ी-बूढ़ी आ जाय, तो तुम उसके चरण छुओ; लेकिन शायद अब उन्हें मालूम होने लगा है कि इस उम्र में सभी थोड़े-बहुत अल्हड़ होते हैं। शायद उन्हें अपनी जवानी याद आ रही है। कहती थीं, यही तो शौक-सिंगार, पहनने-ओढ़ने, खाने-खेलने के दिन थे। बुढ़ियों का तो दिन-भर तांता लगा रहता है, कोई कहाँ तक उनके चरण छुए और क्यों छुए ? ऐसी कहाँ की बड़ी देवियाँ हैं।'

स्त्री –'मुझे तो हर्षोन्माद हुआ चाहता है।'

पति –'मुझे तो विश्वास ही न आता था। स्वप्न देखने का सन्देह हो रहा था।'

स्त्री –'अब आई हैं राह पर।'

पति –'कोई दैवी प्रेरणा समझो।'

स्त्री –'मैं कल से ठेठ बहू बन जाऊँगी। किसी को खबर भी न होगी कि कब अपना मेक-अप करती हूँ। सिनेमा के लिए भी सप्ताह में एक दिन काफी है। बूढ़ियों के पाँव छू लेने में ही क्या हरज है ? वे देवियाँ न सही, चुड़ैलें ही सही; मुझे आशीर्वाद तो देंगी, मेरा गुण तो गावेंगी।'

पति –'सिनेमा का तो उन्होंने नाम भी नहीं लिया।'

स्त्री –'तुमको जो इसका शौक है। अब तुम्हें भी न जाने दूंगी।'

पति –'लेकिन सोचो, तुमने कितनी ऊँची शिक्षा पायी है, किस कुल की हो, इन खूसट बुढ़ियों के पाँव पर सिर रखना तुम्हें बिलकुल शोभा न देगा।'

स्त्री –'तो क्या ऊँची शिक्षा के यह मानी हैं कि हम दूसरों को नीचा समझें ? बुड्ढे कितने ही मूर्ख हों; लेकिन दुनिया का तजरबा तो रखते हैं। कुल की प्रतिष्ठा भी नम्रता और सद्व्यवहार से होती है, हेकड़ी और रुखाई से नहीं।'

पति –'मुझे तो यही ताज्जुब होता है कि इतनी जल्द इनकी कायापलट कैसे हो गयी। अब इन्हें बहुओं का सास के पाँव दबाना या उनकी साड़ी धोना,या उनकी देह में मुक्कियाँ लगाना बुरा लगने लगा है। कहती थीं, बहू कोई लौंडी थोड़े ही है कि बैठी सास का पाँव दबाये।'

स्त्री –'मेरी कसम ?'

पति –'हाँ जी, सच कहता हूँ। और तो और, अब वह तुम्हें खाना भी न पकाने देंगी। कहती थीं, जब बहू के सिर में दर्द होता है, तो क्यों उसे सताया जाय ? कोई महाराज रख लो।'

स्त्री –'(फूली न समाकर) मैं तो आकाश में उड़ी जा रही हूँ। ऐसी सास के तो चरण धो-धोकर पियें; मगर तुमने पूछा, नहीं, अब तक तुम क्यों उसे मार-मारकर हकीम बनाने पर तुली रहती थीं। पति पूछा, क्यों नहीं, भला मैं छोड़नेवाला था। बोलीं, मैं अच्छी हो गयी थी, मैंने हमेशा खाना पकाया है, फिर वह क्यों न पकाये। लेकिन अब उनकी समझ में आया है कि वह निर्धन बाप की बेटी थीं, तुम सम्पन्न कुल की कन्या हो !'

स्त्री –'अम्माँजी दिल की साफ हैं। इन्हें मैं क्षमा के योग्य समझती हूँ। जिस जलवायु में हम पलते हैं, उसे एकबारगी नहीं बदल सकते। जिन रूढ़ियों और परम्पराओं में उनका जीवन बीता है, उन्हें तुरन्त त्याग देना उनके लिए कठिन है। वह क्यों, कोई भी नहीं छोड़ सकता। वह तो फिर भी बहुत उदार हैं। तुम अभी महाराज मत रखो। ख्वामख्वाह जेरबार क्यों होंगे, जब तरक्की हो जाय, तो महाराज रख लेना। अभी मैं खुद पका लिया करूँगी। तीन-चार प्राणियों का खाना ही क्या। मेरी जात से कुछ अम्माँ को आराम मिले। मैं जानती हूँ सब कुछ; लेकिन कोई रोब जमाना चाहे, तो मुझसे बुरा कोई नहीं।'

पति –'मगर यह तो मुझे बुरा लगेगा कि तुम रात को अम्माँ के पाँव दबाने बैठो।'

स्त्री –'बुरा लगने की कौन बात है, जब उन्हें मेरा इतना खयाल है, तो मुझे भी उनका लिहाज करना ही चाहिए। जिस दिन मैं उनके पाँव दबाने बैठूँगी, वह मुझ पर प्राण देने लगेंगी। आखिर बहू-बेटे का कुछ सुख उन्हें भी तो हो ! बड़ों की सेवा करने में हेठी नहीं होती। बुरा तब लगता है, जब वह शासन करते हैं और अम्माँ मुझसे पाँव दबवायेंगी थोड़े ही। सेंत का यश मिलेगा।'

पति–'अब तो अम्माँ को तुम्हारी फजूलखर्ची भी बुरी नहीं लगती। कहती थीं, रुपये-पैसे बहू के हाथ में दे दिया करो।'

स्त्री –'चिढ़कर तो नहीं कहती थीं ?'

पति –%नहीं, नहीं, प्रेम से कह रही थीं। उन्हें अब भय हो रहा है, कि उनके हाथ में पैसे रहने से तुम्हें असुविधा होती होगी। तुम बार-बार उनसे माँगती लजाती भी होगी और डरती भी होगी एवं तुम्हें अपनी जरूरतों को रोकना पड़ता होगा।'

स्त्री –'ना भैया, मैं यह जंजाल अभी अपने सिर न लूँगी। तुम्हारी थोड़ी-सी तो आमदनी है, कहीं जल्दी से खर्च हो जाय, तो महीना कटना मुश्किल हो जाय। थोड़े में निर्वाह करने की विद्या उन्हीं को आती है। मेरी ऐसी जरूरतें ही क्या हैं ?मैं तो केवल अम्माँजी को चिढ़ाने के लिए उनसे बार-बार रुपये माँगती थी। मेरे पास तो खुद सौ-पचास रुपये पड़े रहते हैं। बाबूजी का पत्र आता है, तो उसमें दस-बीस के नोट जरूर होते हैं; लेकिन अब मुझे हाथ रोकना पड़ेगा। आखिर बाबूजी कब तक देते चले जायँगे और यह कौन-सी अच्छी बात है कि मैं हमेशा उन पर टैक्स लगाती रहूँ ?'

पति –'देख लेना, अम्माँ अब तुम्हें कितना प्यार करती हैं।'

स्त्री –'तुम भी देख लेना, मैं उनकी कितनी सेवा करती हूँ।'

पति –'मगर शुरू तो उन्होंने किया ?'

स्त्री –'केवल विचार में। व्यवहार में आरम्भ मेरी ही ओर से होगा। भोजन पकाने का समय आ गया, चलती हूँ। आज कोई खास चीज तो नहीं खाओगे ?'

पति –'तुम्हारे हाथों की रूखी रोटियाँ भी पकवान का मजा देंगी।'

स्त्री –'अब तुम नटखटी करने लगे।'